44 प्राचीन संस्कृत साहित्य की विशेषताएँ

भारत तथा विश्व की प्राचीनतम भाषाओं में संस्कृत सबसे प्राचीन और सबसे वैज्ञानिक भाषा मानी जाती है। आधुनिक भारतीय भाषाओं की स्रोत भाषा भी संस्कृत है और भारत की सभी भाषाओं में संस्कृत के शब्द अपने मूल रूप में तथा बदले हुए रूप में आज भी विद्यमान हैं।

व्याकरण की दृष्टि से पूर्णत: वैज्ञानिक संस्कृत भाषा के उपलब्ध साहित्य में ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद सबसे प्राचीनतम रचनाएँ मानी जाती हैं। वेद को दिव्य देवों के द्वारा रचित माना गया है। निश्चित रूप से जिन ऋषि-मुनियों या बुद्धिजीवी चिन्तकों ने वेदों की रचना की होगी उनका ज्ञान, अधिक उन्नत और विशिष्ट होगा। वेदों में निहित ज्ञान को देखकर प्रतीत होता है कि वेदों की रचना बौद्धिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से प्रबुद्ध और सुसंस्कृत युग में हुई होगी।

वैदिक साहित्य

संस्कृत का वैदिक साहित्य विश्व का सबसे प्राचीन किंतु सबसे प्रौढ़ साहित्य है। आज की क्रिश्चियन सदी के प्रारम्भ को केन्द्र में रखकर यदि वैदिक साहित्य के रचना समय का निर्धारण किया जाए तो वह निम्नांकित तालिका के द्वारा देखने पर ईसा से अठारह हज़ार वर्ष पूर्व का सिद्ध होता है:

आज तक उपलब्ध और विद्यमान संस्कृत साहित्य को देख कर सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि इस विशाल उपलब्ध साहित्य के साथ-साथ इतना ही विस्तृत और गंभीर साहित्य हज़ारों वर्षों की राजनीतिक-प्राकृतिक हलचलों के चलते काल के अंधेरे में भी गुम हो गया होगा। प्रमाणस्वरूप हमें संस्कृत के अनेक ग्रंथों में ऋग्वेद की शाखाओं का उल्लेख मिलता है किंतु उपलब्ध मात्र दो हैं। इसी प्रकार सामवेद की हज़ारों अनेक शाखाओं का उल्लेख अनेक संस्कृत रचनाओं में मिलता है किंतु केवल तीन ही उपलब्ध हैं। इसी प्रकार भारत के कुछ परिवार ऐसे हैं जिनके घरों में पीढ़ी-दर-पीढ़ी कुछ ग्रंथ सुरक्षित रखे हैं। उनमें से कुछ देवनागरी लिपि में न होकर किसी अन्य लिपि में हैं और ऐसे ग्रंथ अभी तक प्रकाशित नहीं हो सके हैं।

डॉ. सरस्वती बाली, पूर्व रीडर, संस्कृत विभाग, कालिन्दी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

Scanned by TapScanner

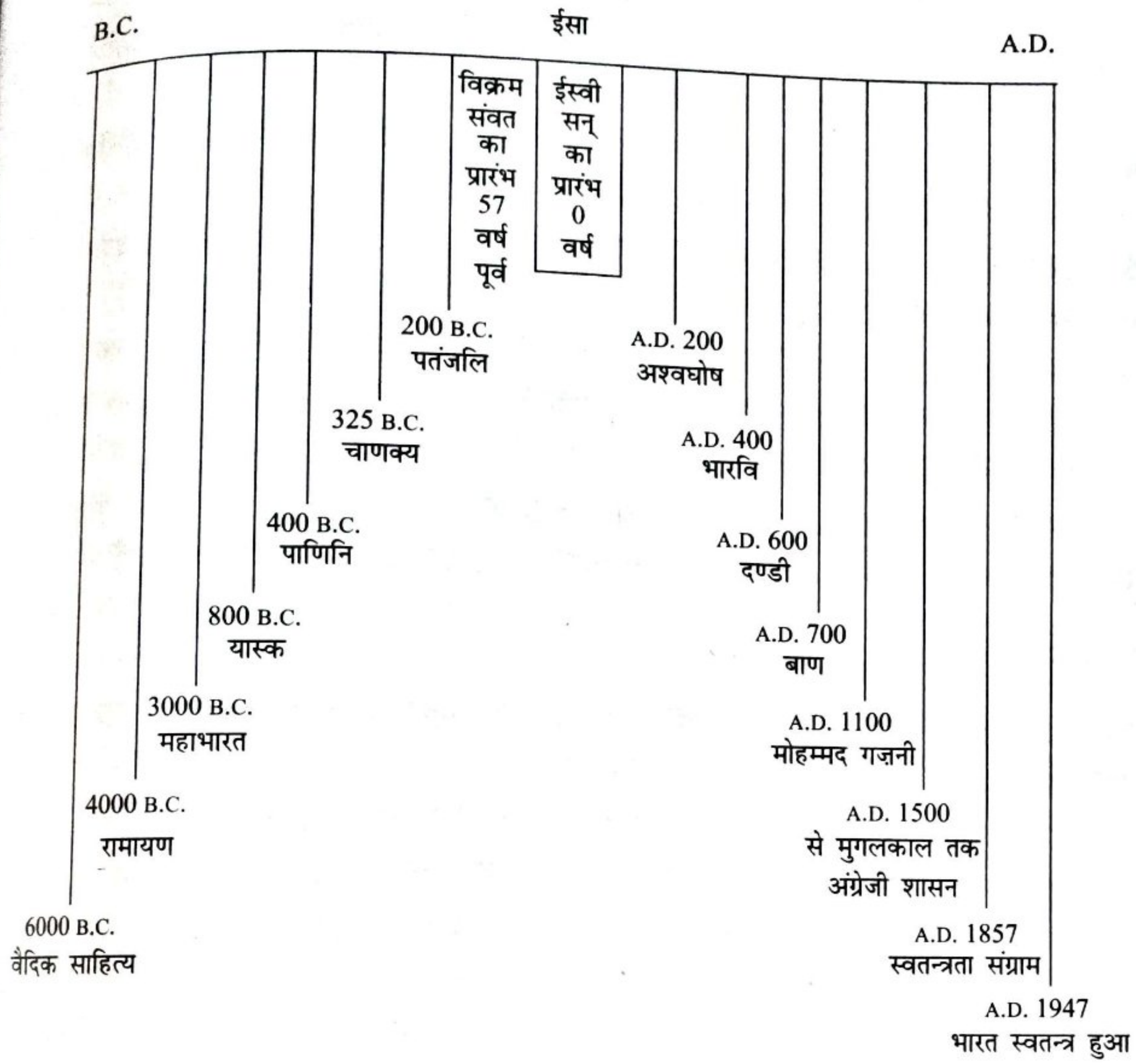

वैदिक साहित्य के ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद संहिता के नाम भी पहचाने जाते हैं। वेदों की रचना के बाद आने वाले युगों के बुद्धिजीवियों ने वेदों की व्याख्या की तथा वेदों की सबसे पहली व्याख्या ब्राह्मण-ग्रंथों के रूप में विद्यमान है। आरण्यक साहित्य और उपनिषद साहित्य भी वेदों के ज्ञान के विभिन्न पक्षों की व्याख्या करने वाली रचनाएँ हैं। आरण्यक ग्रंथों की रचनाएँ अरण्य के शांत-सुस्थिर वातावरण में अध्ययन-अध्यापन की प्रक्रिया के अन्तर्गत रची गई/आरण्यक ग्रंथों में वेदों के अध्यात्म दर्शन की व्याख्या है। उपनिषदों की व्याख्याएँ भी गुरुकुल में गुरु के सान्निध्य में शिष्यों के अध्ययन के दौरान की गईं। वेदों की इन विभिन्न व्याख्याओं के अतिरिक्त भी वेदों के पठन-पाठन एवं अर्थ ग्रहण की सुविधा के लिए वेदांग साहित्य भी रचा गया। वेदांग साहित्य के छः अंग हैं:-

1. **शिक्षा**—वेदों के शुद्ध उच्चारण की शिक्षा देने के लिए बीस से भी अधिक ऋषियों ने शिक्षा संबंधी ग्रंथ लिखे।
2. **कल्प साहित्य** में वेदों के श्रवण तथा अर्थ-ग्रहण संबंधी सूत्र बताए जाते हैं।
3. **व्याकरण**—महर्षि पाणिनी द्वारा रचित व्याकरण ग्रंथ अष्टाध्यायी संस्कृत भाषा का एक ऐसा व्याकरण ग्रंथ है जिस पर आज की भारतीय भाषाओं के व्याकरण

Scanned by TapScanner

आधारित हैं। कात्यायन वैयाकरण ने वार्तिक और पतंजलि ने महाभाष्य शीर्षक से व्याकरण ग्रंथों की रचना की।

4. **निरुक्त साहित्य**–महर्षि यास्क ने 'वैदिक निघण्टु' की रचना की जिसके निरुक्तों में वैदिक मंत्रों एवं शब्दों की व्याख्या की गई है।
5. **छन्द**–पिंगल द्वारा रचित छन्द-सूत्र वैदिक छन्दों का ज्ञान प्रदान करने वाला छन्दशास्त्र है।
6. **ज्योतिष**–आचार्य *लगध* ने 'वेदांग ज्योतिष' नामक ग्रंथ की रचना की, जिसमें विभिन्न वैदिक यज्ञों(परियोजनाओं) की तिथि एवं समय निर्धारण करने के नियम बताए हैं। इसके दो भाग हैं: क) 43 श्लोकों वाला याजुष् ज्योतिष; ख)36 श्लोकों में रचित आर्य ज्योतिष।

अनुक्रमणि (Bibliography) साहित्यः–वेदों की रक्षा के लिए अनुक्रमणि ग्रंथों की रचना की। इनमें वेदों के सूक्तों, मंत्रों, ऋषियों, देवताओं और छन्दों की सूचियाँ हैं।

वैदिक साहित्य की विशेषताएँ

क) यज्ञ संस्था–चारों वेदों में से यजुर्वेद में यज्ञ को एक महत्त्वपूर्ण अनुष्ठान के रूप में प्रस्तुत किया गया है। 'यज्ञ' बौद्धिक व्यवहार का परिचायक शब्द है, जिसमें चिंतनशील प्रबुद्ध वर्ग मानव और प्रकृति के लिए हितकर अनुसंधान कार्यों में सामूहिक रूप से भागीदारी करता था। यज्ञ कर्म के उद्देश्य भी व्यक्ति स्वार्थ के न होकर लोभ एवं प्रकृति के हित के रहे:-

1. यज्ञ में प्रकृति को श्रेष्ठ दिव्य रूप में मानकर उसकी उपासना यानि संभाल करना।
2. प्रकृति के द्वारा दी गई अमूल्य वस्तुओं को यज्ञ के माध्यम से प्रकृति को वापिस समर्पित करना अर्थात् प्रकृति के दोहन-शोषण के साथ प्रकृति की उर्वरा शक्ति को बनाए रखने के लिए यत्नशील रहना।
3. प्रकृति के प्रति कृतज्ञता का भाव रखना अर्थात समस्त प्राणिमात्र के जीवन के संरक्षण, पोषण एवं विकास में सहयोगी प्रकृति की सृजनधर्मिता को न भूलना और दंभ या भ्रमवश स्वयं को प्रकृति से श्रेष्ठ न समझना।
4. प्रकृति द्वारा दिए सुंदर पर्यावरण की रक्षा। यदि प्राकृतिक पर्यावरण की रक्षा मनुष्य नहीं करेगा तो मानव जाति का यह अतिचार प्रकृति के संतुलन को ध्वस्त करेगा और इस पर आधारित विश्व-ब्रह्माण्ड का अस्तित्व भी संकट ग्रस्त हो जाएगा।

ख) देव उपासना–वैदिक साहित्य की दूसरी सामान्य विशेषता है प्रकृति के विभिन्न अंगों एवं कार्य-कलापों की देवता के रूप में कल्पना कर उनकी उपासना करना। वैदिक युग के चिंतकों का मत था कि प्रकृति के नियमों द्वारा मानव-जीवन के सभी नियम संचालित होते हैं। प्रकृति का संतुलित एवं समन्वित शांत रूप सृष्टि के प्राणिमात्र के लिए हितकारी होता है और प्रकृति का संतुलन जब जहाँ बिगड़ता है तो प्रकृति का कोप विपत्तिजनक होता है। इसीलिए उन्होंने वर्षा और जल की कृषि में उपयोगिता, सूर्य-वायु अग्नि आदि की समस्त जीवन में संरक्षण के क्षेत्र में उपयोगिता को परखा तो उन्होंने वर्षा को इंद्र, जल को वरुण, अग्नि को अग्नि देवता, सूर्य को मित्र, सूर्योदय से पूर्व के समय को उषा, शाम को सन्ध्या,

Scanned by TapScanner

वायु को पवन देव आदि रूपों में पूज्य रूप प्रदान किया और जनसाधारण को प्रकृति की इन सभी शक्तियों की सार्थकता और उपयोगिता के प्रति सजग, कृतज्ञ और कर्त्तव्यनिष्ठ बनाने के उद्देश्य से इनकी पूजा का आदेश दिया। यहीं से वैदिक ऋषियों की बहुदेववाद में आस्था स्पष्ट होती है किंतु कुछ वैदिक ऋषियों ने एकेश्वरवाद(मोनोथीज़्म) की कल्पना की तो कुछ ने बहुदेववाद(पैन्थीज़्म) का अनुसरण किया। वैदिक युग की इस देवोपासना का यह रोचक स्वरूप आज तक विद्यमान है। आज भी भक्त एक देवता को मानते हुए भी रामकृष्ण, हनुमान, शिव, दुर्गा शक्ति आदि को भी मानता है

ग) **सृष्टि विज्ञान अथवा ब्रह्माण्ड विज्ञान**–वैदिक साहित्य ब्रह्म, पृथ्वी, सृष्टि, जीवन आदि की रचना के रहस्यों की भी व्याख्या करता है। ऋग्वेद के चार भाववृत्त सूक्त सृष्टि के निर्माण से पहले की नियति का वर्णन करते हैं। पुरुष सूक्त परमात्मा द्वारा सृष्टि की सृष्टि का वर्णन करता है। हिरण्यगर्भी सूक्त में सृष्टि, सृष्टिकर्त्ता और इनके प्रति मानव मात्र के कर्त्तव्यों का विवेचन है। काल विवेचन, दर्शन तत्त्वज्ञान आदि के सृष्टि-ब्रह्माण्ड जीवन के संबंधों, रहस्यों एवं गुणों के विवेचन भी वैदिक साहित्य में विद्यमान हैं।

घ) **जीवात्मा-परमात्मा**–वैदिक साहित्य में जीव और परमात्मा संबंधी चिंतन विद्यमान है। जीव अर्थात प्राणी कर्म विधान में बंधा कर्मों के अनुसार फल अर्थात स्थितियों को भोगता है और कर्म-फल और कर्म-विधान के बंधन से मुक्त रहने वाला परमात्मा कहलाता है(ऋग्वेद, 1.164.20)।

ङ) **असद्-सद् विवेचन**–वैदिक साहित्य का अन्य प्रिय विषय असत्-सत् विवेचन है। असत् अर्थात् सृष्टि से पहले की अविद्यमानता की स्थिति और सत् (विद्यमानता की स्थिति) के बीच के रहस्यों की व्याख्या वैदिक मुनियों ने की है। परमेष्ठि ऋषि ने सृष्टि से पहले की प्रलय की दशा का वर्णन किया है और इस दशा में जब कोई एक तत्त्व प्राणवान या स्वधावान हुआ तब उसे ऋषि ने 'काम'(इच्छा) कहा और इस काम में असत् सत् (अर्थात् अविद्यमान विद्यमान) हो गया। आज का विज्ञान पुरुष भी कमोबेश इसी स्थिति की कल्पना करता है। जब सभी घटक मोलिक्यूल्स संतुलन में रहते हैं तब वे निष्क्रिय रहते हैं और जब इनकी स्थिति में बदलाव होता है तो कोई सक्रिय मोलिक्यूल अन्य तत्त्वों के साथ मिलकर नाना रूपों में प्रकट हो जाता है।

1. वृहत(नियम) और सत्य(पालन, व्यवहार)–वैदिक साहित्य में प्रकृति के संचालन के रहस्यों का वर्णन वृहत रूप में किया गया है। भाव सूक्त (10.180) के तीन मंत्र सृष्टि की उत्पत्ति के रहस्य को स्पष्ट करते हैं। इन मंत्रों के अनुसार रात्रि, समुद्र, संवत्सर, सूर्य, चंद्रमा, दिन-रात, द्युलोक, पृथ्वी, अंतरिक्ष आदि सभी एक निश्चित क्रम विधान में वृहत(नियम) और सत्य(परब्रह्म) के तप अर्थात् ऊर्जा से उत्पन्न हुए हैं।
2. ब्रह्माण्ड की पूर्ण स्थिति का ज्ञान भी वैदिक साहित्य का महत्त्वपूर्ण विषय है। वैदिक मंत्रों के अनुसार ब्रह्माण्ड आदि-मध्य-अंत सीमाओं से मुक्त है। ब्रह्माण्ड के सभी तत्त्व अपने मूल रूप में सदैव विद्यमान रहते हैं, कोई भी सृष्टि तत्त्व नष्ट नहीं होता केवल उसका रूप बदल जाता है।

Scanned by TapScanner

3. जीवन के व्यवहार पक्ष पर भी वैदिक साहित्य का चिंतन शाश्वत महत्त्व का है। संस्कृति, राजनीति और समाज का विवेचन वैदिक साहित्य में गंभीर और व्यावहारिक महत्त्व का है।

संस्कृति—संस्कृति सभ्य समाज के युगों-युगों के अनुभवों को कसौटी पर खरे उतरे व्यावहारिक मानव-मूल्यों का संचयन होती है। वैदिक संस्कृति के चार प्रमुख स्तंभ हैं: 1) पुनर्जन्म में विश्वास, 2) पाप-पुण्य में अंतर, 3) ऋणमुक्त होने में विश्वास और 4) चार पुरुषार्थों में विश्वास। पुनर्जन्म में आस्था रखने वाला वैदिक समाज स्वस्थ जीवन मूल्यों को स्थापित करता है और पाप-पुण्य के बीच के अंतर की पहचान वैदिक मानव को स्वस्थ समाज के प्रति दायित्व बोध से भरती है! ऋणमुक्त होने की कामना समाज में मनुष्य को कृतज्ञ और स्वाभिमानी बनाती है तथा आर्थिक-सामाजिक-आत्मिक-आध्यात्मिक आदि क्षेत्रों में उत्तरोत्तर विकासशील बनाती है। धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष नामक चार पुरुषार्थों में विभक्त मानव क्रियाओं से समाज और परिवार में संघर्ष-कलह के स्थान पर परस्पर सम्मान एवं संरक्षण की भावना बनी रहती है। मनुष्य को अपने धर्म अर्थात् कर्त्तव्यों एवं कर्मक्षेत्र को जान कर अर्थोपार्जन करना चाहिए और आर्थिक दृष्टि से सक्षम होने पर आत्म-विस्तार या परिवार-विस्तार या अपने लक्ष्यों-विचारों का सामाजिक विस्तार करना चाहिए। जीवन में इस कर्म विधान का पालन करने से परिवार और समाज में कभी असंतोष, बगावत, टूटन, असुरक्षा जैसी स्थितियाँ नहीं आ सकतीं।

समाज—वैदिक साहित्य में विद्यमान समाज व्यक्ति और समूह के बीच के संबंधों एवं उनके भाव संबंधों की स्थिति को स्पष्ट करता है। वैदिक साहित्य के समाज में व्यक्ति को 'अमृत' पुत्र (विश्वे अमृतस्य पुत्रः (ऋग्वेद 10.13.1)) कहा है अर्थात् समाज का प्रत्येक व्यक्ति अमृतपुत्र अर्थात् समान द्विव्य अंश से युक्त है अर्थात सभी व्यक्ति समान हैं। व्यक्ति का लक्ष्य 'आत्मीय' शक्ति को पहचानना है अर्थात् यह जान लेना कि सभी आत्मवत् है और व्यक्ति को सबका हित करना है।

वेदों में व्यक्ति की महत्त्वपूर्ण भूमिका बताई गई है। व्यक्ति एक स्वतंत्र इकाई होते हुए भी परिवार, समाज और विश्व समाज से जुड़ा रहता है। व्यक्ति 'वसुधैव कुटुम्बकम्' वाले परिवार का सदस्य है। ऋग्वेद का एक मंत्र मनुष्यों को आपस में मिलजुल कर रहने का निर्देश देता है और स्पष्ट करता है कि व्यक्ति को अपने अधिकार के हिस्से को ही लेना चाहिए, दूसरे के भाग को हस्तगत नहीं करना चाहिए(ऋग्वेद, 101, 191, 2)। इसी प्रसंग में अनेक मंत्रों में यह भी निर्देश दिया है कि सभी मनुष्यों को मिलकर विचार-विमर्श करना चाहिए और सर्वसम्मति के लिए सबको आमंत्रित करना चाहिए। ऋग्वेद के एक मंत्र (3, 30.1–7) में कहा गया है कि 'सत्य तो एक है किंतु विद्वान उसकी अनेक प्रकार की व्याख्या करते हैं।' इसका तात्पर्य यही है कि सत्य की खोज करने वाले सभी चिंतन, धर्म, दर्शन आदि एक समान हैं।

Scanned by TapScanner

वैदिक समाज में सबको सभी आस्थाओं पर विश्वास रखते हुए भी अपनी स्वतन्त्र वैचारिक आस्था रखने की छूट थी। इसी प्रकार 'स्वधर्म' वर्णधर्म, आश्रम धर्म, जाति धर्म, कुल धर्म, देश धर्म, राज धर्म, प्रजा धर्म एवं मित्र धर्म आदि दायित्वों का पालन सभी सामाजिकों के लिए एक जैसा था।(ऋग्वेद 1.164.46)

गार्गी, मैत्रेयी जैसी महिलाओं का विद्वानों की सभा में उपस्थिति का वर्णन महिलाओं की स्वतंत्र जीवन-शैली, निर्णय, विचार-विमर्श शास्त्रार्थ में उनके समान अधिकार वाली स्थिति का संकेत देता है। वेदों का अध्ययन, उपनयन, संस्कार, अध्यात्म का अध्ययन, धार्मिक अनुष्ठान आदि की अनुमति वैदिक काल की महिलाओं को प्राप्त थी।

वेदकालीन समाज-व्यवस्था में आश्रम-व्यवस्था के रूप में परिवार में व्यक्ति के समूचे जीवन के कर्त्तव्यों एवं परिवार में उसकी साझेदारी को इस प्रकार तय किया था कि परिवार के बाल-युवा-पीढ़ी एवं वयोवृद्ध सदस्यों में टकराहट न हो और सद्‌भावना बनी रहे। उस युग के चिंतकों ने मानव की सौ वर्ष की आयु स्वीकार की है और जीवन को चार चरणों में बांटा है। प्रथम चरण ब्रह्मचर्य अध्यवसाय अर्थात अध्ययन मनन का, दूसरा चरण परिवार गृहस्थी की जिम्मेदारियों के निर्वाह का, तीसरा चरण व्यक्ति के परिवार के दायरे से बाहर समाज में सक्रियता का संदेश देता है और चौथा चरण समाज के अनुभव पूर्ण मार्गदर्शन, चिंतन-मनन-ध्यान के लिए नियत था। इस व्यवस्था के चलते न तो शिशु-केन्द्रों की आवश्यकता थी और न ही वृद्धाश्रमों की ज़रूरत थी।

वैदिक समाज में शिक्षा-व्यवस्था भी ज्ञान-विज्ञान के विविध विषयों से युक्त थी। अध्यात्म-दर्शन, योग, ज्योतिष और नीतिशास्त्र के अतिरिक्त गणित, खगोलशास्त्र, रसायनशास्त्र, सूक्ष्म-अणु(आधुनिक नानो तकनीक) विषय, कृषि, पशु-पालन, वन-प्रकृति, संरक्षण, व्यापार-जैसे वाणिज्यिक विषय, शासन-कला, प्रशासन, शस्त्र-विद्या, दूत व्यवस्था, गुप्तचर व्यवस्था, अन्तर्राज्यीय-संबंध जैसे राजनीतिक विषय एक निश्चित एवं समृद्ध स्वरूप में वैदिक साहित्य में वर्णित हैं। यह वैदिक कोष केवल आधुनिक भारतीय चिंतन को ही नहीं पाश्चात्य(विशेष रूप से जर्मन) चिंतन को भी, शोध एवं मनन के कई नये आयाम प्रदान करता रहा है।

पूर्व ऋग्वेद समाज जन-जातीय एवं राजनीतिक दृष्टि से व्यवस्थित समाज प्रतीत होता है। इसीलिए वैदिक साहित्य में राजकीय सत्ता एवं क्षत्रिय शक्ति के रूप में राजा-राजपद का उल्लेख मिलता है। पुरोहित, सेनानी एवं ग्रामणी इस काल के प्रमुख प्रशासनिक अधिकारी थे। सभा (कार्यकारिणी परिषद) 'समिति'(सभी व्यस्कों का सदन) तथा विदथ(विद्वत जनों का सदन) इस काल की प्रजातान्त्रिक संस्थान के प्रतीक थे तथा इनका उद्देश्य राज्य का संरक्षण था। गणतन्त्र, कुलीन तंत्र, राजतंत्र का अस्तित्व भी इस काल में परिलक्षित होता है। प्रजातंत्रीय संस्थाओं का कालान्तर में विलोप, आधुनिक विचारकों के शोध, चिंतन और मनन के लिए एक चुनौतीपूर्ण विषय बन सकता है।

राष्ट्र की परिकल्पना–वैदिक सूक्तों में राष्ट्र को व्यक्ति-परिवार एवं समाज से भी ऊँचा माना गया है। वेदों में राष्ट्र शब्द का भी अनेक बार प्रयोग किया गया है। ऋग्वेद में राष्ट्र

Scanned by TapScanner

को माता का दर्जा (10.15.5.3) दिया है। शुक्ल यजुर्वेद के दसवें अध्याय में राज्याभिषेक के समय पूरे मंत्रिमंडल की उपस्थिति का वर्णन है। पुरोहित राष्ट्र का हितचिंतक होता था और वह राष्ट्र के अधिकारियों से योग्य व्यक्ति को राजा चुनने तथा चुने हुए व्यक्ति के हाथों राष्ट्र को सौंपने को कहता था और इस प्रकार चुने गए राजा को राष्ट्र आत्मवत् प्रिय होता था। ब्रह्मगवी सूक्त में राष्ट्र हानि के कारणों का वर्णन किया गया है। अनीति के कारण राष्ट्र का तेज नष्ट हो जाता है(अथर्ववेद 5.19) जिस राष्ट्र में ब्राह्मण अर्थात् बुद्धिजीवी की हिंसा होती है उस राष्ट्र को विपत्तियाँ नष्ट कर देती हैं, आदि आदि।

वेदों में राष्ट्रीय भावना के अनेक पक्षों का भी निरूपण है। चाणक्य के राष्ट्र का स्वप्न और आज के राष्ट्र की कल्पना का आधार भी वैदिक विषयों की इसी सोच पर आधारित है।

समग्र विश्व की कल्पना–वेदों में विश्व देव की कल्पना विद्यमान है। विश्व देव में विश्व के सभी ज्ञात, अज्ञात देवों का समावेश है और यह विश्व देव समस्त ब्रह्माण्ड का कल्याण करने वाला है(ऋग्वेद 7.35.11)। इसी प्रकार "द्यौः शान्तिरन्तरिक्षं, शान्ति पृथिवि, शान्तिरापाः, शान्तिरोषधयः शान्ति। शान्ति वनस्पतयः शान्ति विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्व शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि।" इस मंत्र में अहिंसा शान्ति और पर्यावरण के संरक्षण के संकेत विद्यमान हैं। इस मंत्र के द्वारा वेद मानव की स्वार्थी, हिंसक और शोषक वृत्ति की ओर भी संकेत करते हैं जो अपने स्वार्थ के लिए प्रकृति का इतना शोषण करता है कि प्रकृति का संतुलन बिगड़ जाता है और प्रकृति के साथ-साथ मानव-समाज भी विनाश के कगार पर आ जाता है। पर्यावरण पर होने वाले इस अतिचार को रोकने के लिए ऋषि ने इस मंत्र के द्वारा पर्यावरण के प्रति सबको जागरूक किया है और विश्व शांति का संदेश दिया।

वैदिक विचारधारा का प्रभाव आने वाले संस्कृत साहित्य पर तो स्पष्ट दिखाई देता है क्योंकि रामायण में वर्णित समाज वेदों में विद्यमान सामाजिक मूल्यों का समर्थन करता दिखाई देता है। इसी प्रकार रामायण के आदर्श राज्य में भी वैदिक राष्ट्र की भावना विद्यमान है। महाभारत में उल्लिखित विदुर नीति, भीष्म नीति, राजनीति, युधिष्ठिर का धर्म वैदिक मूल्यों की ही प्रतिस्थापना है। साथ ही संस्कृत का यह साहित्य प्रत्येक युग में मूल्यों में आने वाली गिरावट की ओर भी संकेत करता है। इसीलिए आज भी शिक्षा और उच्च शिक्षा का आदर्श यह वैदिक मंत्र है–

संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानानां उपासते।
समानो मन्त्रः समितिः समानो समानं मनः सह चित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि।।
समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानयस्तु वो मनः यथा वः सुसहासति।

□□□

Scanned by TapScanner

45 प्राचीन तमिल साहित्य की विशेषताएँ

ईसा पूर्व भारतीय समाज में, द्रविड़ और आर्य दो जातियाँ थीं, जो क्रमशः तमिल और संस्कृत भाषा का प्रयोग करती थीं।

द्रविड़ भाषा परिवार की तमिल, तेलुगु, कन्नड, मलयालम भाषाओं में तमिल अति प्राचीन तथा साहित्यिक दृष्टि से अधिक समृद्ध भाषा है। तमिल भाषा तमिलनाडु एवं उत्तरी-लंका की प्रधान भाषा है। इसके अतिरिक्त यह भाषा बर्मा, सिंगापुर, मलेशिया, इंडोनेशिया, दक्षिण अफ्रीका, फीजी एवं मॉरिशस आदि क्षेत्रों में भी बोली जाती है। इसी प्रकार अत्यन्त प्राचीन काल से तमिल की अपनी अलग बट्टेलुत्तु(गोलाक्षर) लिपि रही है।

प्राचीन काल से तमिल भाषा विषयक दो शैलियों का उल्लेख हुआ है–1) शेन्तमिल अर्थात् तमिल भाषा का साहित्यिक तथा शुद्ध रूप तथा 2) कोडुन्तमिल अर्थात तमिल भाषा का व्यावहारिक और बोलचाल का रूप। शुद्ध तमिल भाषा का केंद्र मदुराई और उसके आस-पास का प्रदेश था। तमिल भाषा की एक साहित्य शैली 'मणिप्रवाल' नाम से भी प्रसिद्ध रही है। इसमें संस्कृत शब्दों का बाहुल्य रहा है। यह शेन्तमिल का एक संस्कृतनिष्ठ रूप है। वैष्णव कवियों ने इसे प्रोत्साहन दिया है किन्तु रामायण के रचयिता कम्बन ने इस शैली को प्रोत्साहित ना करके, संस्कृत ध्वनियों को परिवर्तित कर तमिल ध्वनियों के अनुरूप कर लिया।

प्राचीन तमिल साहित्य को दो भागों में विभाजित किया गया है:–

1) संगम साहित्यः ई.पू. पाँचवी शती से लेकर ई.सन् पहली शती तक। इसके अन्तर्गत व्याकरण तथा काव्य शास्त्र का ग्रन्थ तोलकाप्पियम् एवं अहम् पुरम संबंधी प्रगीत–एट्टुतोगै एवं पत्तुप्पाट्टु सम्मिलित हैं।

2) नीति साहित्य–ई.सन् दूसरी शताब्दी से लेकर ई.सन् छठी शताब्दी तक। इसके अन्तर्गत आदि ग्रन्थ तिरुक्कुरल एवं प्राचीन महाकाव्य–सिलप्पधिकारम् एवं मणिमेखलै आदि रचनाएँ सम्मिलित हैं।

डॉ. मीना गुप्ता, रीडर, हिंदी विभाग, कालिंदी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

Scanned by TapScanner

संगम साहित्य

(ई.पू. पाँचवी शती से लेकर ई.सन् पहली शती तक)

ई.पू. पाँचवी शती से लेकर ई.सन् पहली शती तक जो भी तमिल साहित्य लिखा गया उसे *संगम साहित्य* कहते हैं। संगम से तात्पर्य है प्रत्येक रचना को साहित्य की कसौटी पर परखने वाली कवि परिषद्। पांडय राजाओं के द्वारा ऐसे तीन संघ बनाए गए थे। पहला संघ महामुनि अगस्त्य द्वारा संचालित था जिसमें प्रमुखतः व्याकरण आदि लिखा गया था। परन्तु यह सारा साहित्य समुद्र में समा गया। दूसरा संघ एक प्रसिद्ध विद्वान तोलकाप्पियर की अध्यक्षता में बनाया जिन्होंने व्याकरण के प्रसिद्ध ग्रन्थ तोलकाप्पियम् की रचना की थी। दुर्भाग्यवश तोलकाप्पियम् के अतिरिक्त जितना भी साहित्य इस काल में लिखा गया वह बाढ़ के प्रकोप में बह गया। तत्पश्चात तीसरे संघ के कवियों एवं साहित्यकारों ने एकजुट होकर साहित्य को प्राकृतिक आपदाओं एवं मानवीय असावधानियों से बचाने का प्रयास किया। इसी काल में कई संग्रहों यथा 'एट्टुतोगै' एवं 'पत्तुप्पाटु' काव्य-संग्रहों की रचना की गई। जैसा कि 'नाम' से स्पष्ट होता है पूर्ववर्ती रचना आठ भागों का एक काव्य-संग्रह है तथा परवर्ती रचना दस लम्बी कविताओं का।

समग्रतः तोलकाप्पियम्, एट्टुतोगै एवं पत्तुप्पाटु को ही संगम साहित्य कहा जाता है।

तमिल साहित्य के आरम्भिक काव्य मुख्यतः 'अहवल्', 'कलिप्पा' एवं 'परिपाडल्' छन्दों में लिखे गए हैं। 'अहवल्' छन्द कम से कम तीन पंक्तियों का होता है तथा 'कलिप्पा' एवं 'परिपाडल्' दोनों ही छन्द लोक गीतों के रूपों पर बने हैं।

चेर, चोल और पांड्य तीनों वंशों के राजाओं ने कवियों को संरक्षण प्रदान किया जो इसके एवज में शासकों, उनके सरदारों तथा सामंतों के प्रशस्ति गीत लिखते थे। इस आधार पर संगम साहित्य को दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है-अहम् एवं पुरम्। तमिल में 'अहम्' का अर्थ है 'अंतरंग' और जिसका सम्बन्ध मनुष्य की अंतरंग भावनाओं से होता है एवं 'पुरम्' का अर्थ है बाह्य जीवन से संबंधित भावनाएँ।

अहम्-अहम् काव्य वास्तव में प्रेम संबंधी काव्य है जिसमें नायक नायिका विषयक कविताएँ आती हैं। 'अहम्' का सारतत्त्व, शारीरिक मिलन ही है किन्तु अन्य दूसरे विषयों को भी जो प्रमुख पात्रों की भावनाओं को उद्दीप्त करते हैं, यथा प्रकृति, पक्षी, ऋतुएँ, पेड़, पुष्प आदि को भी उतनी ही महत्ता दी गई है। अहम् की प्रेम सम्बन्धी पृष्ठभूमि को निम्न पाँच चरणों में वर्गीकृत किया गया है।

1. कुरिंजि(पर्वतीय प्रदेश)-किसी पर्वतीय प्रदेश में फूलों की पृष्ठभूमि का अर्थ है किसी युवती की विवाहपूर्व उत्पन्न होने वाली काम की अनुभूति।
2. मुल्लै(ग्रामीण चरागाह प्रदेश)-किसी ग्रामीण चरागाह प्रदेश में फूलों की पृष्ठभूमि का अर्थ है किसी धैर्यशील प्रेमिका का अपने प्रेमी के लौट आने की प्रतीक्षा में रत रहना।

Scanned by TapScanner

3. पालै(ऊजड़ या ऊबड़-खाबड़ मरु प्रदेश)–किसी रेगिस्तान में फूलों की पृष्ठभूमि का अर्थ है विरह की पीड़ा और अकेलापन।
4. नेय्दल्(समुद्रवर्ती प्रदेश)–किसी समुद्रवर्ती क्षेत्र में फूलों की पृष्ठभूमि का अर्थ है विरहणी प्रेमिका की पीड़ादायक प्रतीक्षा।
5. मरुदम(कृषिक्षेत्र या समतल उपजाऊ प्रदेश)–किसी धन-धान्य युक्त सामाजिक क्षेत्र में फूलों की पृष्ठभूमि का अर्थ है परिपक्व प्रेम और सुखी वैवाहिक जीवन।

उपरिलिखित प्रेम के सभी पक्ष 'अहम्' काव्य की महत्त्वपूर्ण पृष्ठभूमि हैं तथा प्रत्येक मानवीय व्यवहार एक समय विशेष अथवा स्थान विशेष से जुड़ा होता है।

पुरम्–पुरम् काव्य में काल्पनिकता का कोई स्थान नहीं है, इसमें प्रमुख रूप से राजाओं, सरदारों एवं सामंतों के जीवन के प्रशस्ति गीत हैं अतएव उनमें तद्युगीन ऐतिहासिक महत्त्व का बहुमूल्य और प्रामाणिक आँकड़ा विद्यमान है। 'पुरम्' कविता में वर्णित संग्राम के विविध विषयों को निम्न सात श्रेणियों में विभाजित किया गया है जिसे 'तिणै' कहा जाता है:–

1. गो-ग्रहण(शत्रु राजा की गाय, बैल, आदि का हरण करना)
2. आक्रमण(शत्रु राज्य पर चढ़ाई करना)
3. आत्मरक्षा(आक्रमणकारी से अपनी रक्षा का प्रयत्न)
4. आक्रमणकारी का नाश करना
5. शत्रु पर विजय
6. युद्ध के वीभत्स दृश्य देखने से निर्वेद
7. विजयी राजा के पराक्रम की प्रशंसा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इन सात तिणै में से छ: युद्ध विषयक विभिन्न पक्षों का वर्णन करते हैं एवं सातवाँ राजा के पराक्रम एवं उदारता के बारे में बताता है जोकि धार्मिक उपदेश एवं स्तुति गान के रूप में है।

तोलकाप्पियम् (तमिल का प्रसिद्ध व्याकरण ग्रन्थ)

प्राचीन साहित्य में से केवल 'तोलकाप्पियम्' ही उपलब्ध है। इस व्याकरण ग्रन्थ को तोलकाप्पियार ने तीसरी शताब्दी के आस-पास लिखा था।

'तोलकाप्पियम्' तमिल शब्दों को निम्न चार श्रेणियों में वर्गीकृत करता है:-

1. इयलशोल–प्राकृतिक शब्द जो तमिल के शुद्ध मूल शब्द हैं।
2. तिरिशोल–प्राकृतिक शब्दों के परिवर्तित रूप जो कविता में प्रयुक्त होते हैं।
3. वडशोल–संस्कृत भाषा से उद्धृत शब्द।
4. तिशैच्चोल–अन्य भाषाओं के शब्द अथवा विभिन्न प्रान्तों में बोले जाने वाले, अपने-अपने प्रान्तीय शब्द।

Scanned by TapScanner

तोलकाप्पियम् में तमिल भाषा के दो रूपों का उल्लेख मिलता है–1.शेन्तमिल अर्थात तमिल भाषा का साहित्यिक तथा शुद्ध रूप तथा 2.कोडुन्तमिल अर्थात तमिल भाषा का व्यावहारिक और बोलचाल का रूप।

वास्तव में तोलकाप्पियम् तीन भागों में विभाजित है और प्रत्येक भाग में नौ अध्याय हैं। तीन प्रमुख भाग इस प्रकार से हैं–

1. ऐलुत्तदिकारम्(अक्षर विभाग)
2. शोल्लदिकारम्(शब्द विभाग)
3. पोरुलदिकारम्(विषय विभाग)

1. ऐलुत्तदिकारम्–'ऐलुत्त' का अर्थ है भाषा-ध्वनि और 'अदिकारम्' का भाग। इस प्रकार ऐलुत्तदिकारम् तमिल भाषा की ध्वनियों के विषय में बताता है। तमिल भाषा में तीस वर्ण हैं जिन्हें 12 स्वरों तथा 18 व्यंजनों में विभाजित किया गया है।

2. शोल्लदिकारम्–शोल का अर्थ है शब्द। अतएव यह भाग तमिल शब्दों, उनके विभागों, वाक्य रचना व वाक्य रचना के कार्यों से सम्बन्धित है। यह पुस्तक शब्दों का वाक्याशों(वाक्य-खण्ड) में, व वाक्यांशों का वाक्यों में गठन का सारा निर्देश देती है।

3. पोरुलदिकारम्–पोरुल से तात्पर्य है अभिव्यक्ति तथा वर्ण्य विषय दोनों। पुस्तक के इस भाग में नौ अध्याय हैं जो कि साहित्य तथा उसके उद्देश्य, तकनीक, रूप और परम्परा से सम्बन्धित हैं तथा सामयिक तथा पूर्ववर्ती तमिल साहित्य की रचना और व्याख्या को परिचालित करते हैं।

एट्टुतोगै (आठ भिन्न-भिन्न कविता संग्रहों का सामूहिक नाम)

ये काव्य संकलन हैं:–

1. नट्रिणै ऩानूरु	2. कुरुन्तौहे ऩानूरु	3. ऐंकुरु नूरु	4. कलित्तोहै
5. अहनानूरु	6. परिपाडल्	7. पुरऩानूरु	8. पदिट्रुप्पत्तु

इन कविता-संग्रहों का विषय 'अहम्' तथा 'पुरम्' है तथा ये अनेक छंदों में लिखे गए हैं। इन कविताओं में कवियों ने मनुष्य के सुप्रतिष्ठित और उत्तम मानव-भावों को उजागर किया है।

पत्तुप्पाट्टु (दस लघु तमिल काव्य)

पत्तुप्पाट्टु अर्थात् दस लघुकाव्य*, ये संगम साहित्य के पुरम श्रेणी के अंतर्गत आते हैं। कविताओं का मुख्य भाव राजा की प्रशंसा, उसका स्तुतिगान, दानशीलता, युद्धकौशल, प्राचीन तमिलनाडु की राजनीति और संस्कृति का चित्रण करना है।

*1.तिरुमुरु हाट्रुप्पडै, 2.पोरुऩर आटरुप्पडै, 3.सिरुपाणाट्रुप्पडै, 4.पेरुम पाणाट्रुप्पडै, 5.मुल्लैप्पाट्टु, 6.मदुरैक काञ्ची, 7.नेडुनल वाडै, 8.कुरिञ्चिप्पाट्टु, 9.पट्टिनपप्पालै, 10.मलैपडुकडाम्।

Scanned by TapScanner

नीतिकाव्य का युग

(ई.सन् दूसरी शताब्दी से लेकर ई.सन् छठी शताब्दी तक)

इस युग में, चेर, चोल और पाण्ड्य राजाओं ने दक्षिण में जो शान्ति स्थापित की थी, वह विदेशी आक्रमणकारियों द्वारा भंग कर दी गई। परिणामस्वरूप साहित्यकारों ने प्रेम तथा जीवन के आकर्षण जैसे विषयों के बजाय आचार शास्त्र एवं नैतिक शिक्षा के विषय अपनाए।

सामाजिक विचार-मंथन के इस युग (ई.सन् दूसरी शती से ई.सन् छठी शती) में पदिणेन कील् कणक्कु अर्थात् अठारह नीति ग्रन्थों का संकलन किया गया। इनकी संरचना एक ही काल अवधि में नहीं की गई। ये समग्र काव्य वेणवा छन्द में लिखे गए इसीलिए इनकी गणना 'पदिणेन कील् कणक्कु' शीर्षक के अन्तर्गत होती है। इन अठारह नीति ग्रंथों में से ग्यारह नैतिक साहित्य से संबंधित हैं तथा बाकी सात पूर्वकालीन संगम साहित्य के अहम् तथा पुरम विषयों से।

ग्यारह नीति ग्रन्थ निम्नांकित हैं:

1.तिरुक्कुरल् 2.नालडियार 3.नाण्मणिक्कडिहै 4.सिरपञ्चमूलम्
5.तिरिकडुहम् 6.एलादि 7.इनियवै नारपदु 8.इन्ना नारपदु
9.पलमोलि नानरू 10.आचारक कोवै 11.मुदु मोलिक काञ्ची

नीतिकाव्यों के अन्तर्गत **तिरुक्कुरल** एवं **नालडियर** ये दो ग्रन्थ प्रमुख हैं, शेष नौ ग्रन्थों के अधिकांश प्रसंगों में तिरुक्कुरल तथा नालडियर की ही सामग्री उद्धृत की गई है और इन नौ ग्रन्थों का केन्द्रबिन्दु नैतिकता तथा सदाचार है। इन ग्रन्थों की विषयवस्तु से यह भी प्रमाणित होता है कि ये जैन तथा बौद्ध संन्यासियों द्वारा लिखे गए हैं।

तिरुक्कुरल

तमिल में 'कुरल' दो पंक्तियों में लिखे जाने वाले छन्द का नाम है। यह ग्रंथ कुरल वेणवा छन्द में रचित है। इसमें कुल मिलाकर सात चरण होते हैं (प्रथम पंक्ति में चार चरण तथा दूसरी पंक्ति में तीन चरण)। 'तिरु' नाम के आगे आदरार्थ जोड़ा जाता है, जो संस्कृत शब्द श्री का स्थानापन्न है। इस प्रकार कुरल शैली में लिखा होने के कारण इसका नाम 'तिरुक्कुरल' पड़ा है। इस ग्रन्थ का रचयिता अज्ञात व्यक्ति है जिसे तिरुवल्लुवर के नाम से जाना जाता है।

समूचा तिरुक्कुरल तीन असमान विस्तार वाले खण्डों में विभाजित है– 1.अरम (धर्म विभाग) 2.पोरुल (अर्थ विभाग) और 3.अहम् (काम विभाग)। पहले विभाग में 300 कुरल या 30 अध्याय हैं, दूसरे विभाग में 700 कुरल या 70 अध्याय हैं, तीसरे में 250 कुरल या 25 अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय मे 10 छंद हैं जो मनुष्य के किसी विशेष गुण या मूल विचार को प्रतिबिम्बित करते हैं।

Scanned by TapScanner

1. अरम (धर्म-विभाग)–प्रथम खण्ड में नैतिकता के सम्पूर्ण पक्ष को गृहस्थ धर्म तथा परिव्राजक(संन्यास) धर्म के माध्यम से अभिव्यंजित किया गया है जोकि बुद्ध की शिक्षा का स्मरण कराता है। तिरुक्कुरल में, उच्च आदर्शों को अंगीकार करने तथा धोखा, झूठी निन्दा और घृणा जैसी दुर्भावनाओं से दूर रहने की शिक्षा भी दी गई है।

2. पोरुल(राजनीति तथा अर्थशास्त्र से सम्बधित विषय)–पोरुल अर्थात अर्थ विभाग को तीन उपखण्डों में विभाजित किया गया है। प्रत्येक उपखण्ड क्रमशः राजा, उसके मंत्री और मंत्रालय तथा प्रजा से जो अपेक्षाएँ की जाती हैं, उससे संबंधित हैं। प्रथम उपखण्ड में, राजा में जो अनिवार्य गुण और विशेषताएँ होनी चाहिए, उनका वर्णन किया गया है। इसके साथ ही, तिरुवल्लुवर राजा की शिक्षा, मंत्रियों का चयन तथा शांति और युद्धकालीन स्थितियों में प्रदर्शित राजा की दक्षता की भी बात करते हैं। दूसरे उपखण्ड में तिरुवल्लुवर मंत्रियों के गुणों की चर्चा करते हैं जो उनमें अनिवार्य रूप से होने चाहिए जैसे देश की रक्षार्थ किलेबन्दी तथा 'नर शक्ति तथा धन शक्ति' का विवेकपूर्ण तथा सम्पूर्ण उपयोग। तीसरे उपखण्ड में तिरुवल्लुवर ने जन(प्रजा), समाज, न्यायालय तथा मंत्रालयों के अनिवार्य गुणों पर चर्चा की है।

3. अहम्(काम विभाग)–यह विभाग मनुष्य के काल्पनिक प्रेम तथा अन्तर्मन की भावनाओं की चर्चा करता है। इस विभाग में तिरुवल्लुवर ने चरित्रों द्वारा प्रेम के विविध पहलुओं का वर्णन किया है

तिरुक्कुरल की प्रमुख विशेषताएँ

तिरुक्कुरल धर्म, अर्थ और प्रेम शास्त्र को विषय बनाकर लिखा गया एक सम्पूर्ण ग्रन्थ है। ग्रन्थ के प्रथम भाग में लेखक ने मनुष्य को शान्तिपूर्ण जीवन-यापन करने की विधियाँ बताई हैं तथा अनुचित रीति से धनोपार्जन ऐसा माना है, जैसे कच्चे घड़े में जल का संचय करना।

दूसरा खण्ड 'पोरुल' राजनीति तथा अर्थशास्त्र पर आधृत है। महत्ता और विवेकपूर्ण तथ्य की दृष्टि से यह संस्कृत में रचित कौटिल्य के अर्थशास्त्र के सदृश है। तिरुक्कुरल सीधे और सच्चे मार्ग के अनुसरण को ही श्रेष्ठ बताता है। तिरुवल्लुवर ने राजकीय तथा प्रशासनिक नियमावली का भी गठन किया जो कि विश्वजनीन मूल्य की है। उदाहरणार्थ दुःखी जनता द्वारा बहाए गए आँसू एक साम्राज्य के धन को नदी में पानी की तरह बहा देते हैं।

तिरुक्कुरल के तीसरे खण्ड में प्रेम के विविध रूपों, भावनाओं तथा अनुभवों का विस्तृत वर्णन है। कुछ का मानना है कि इस खण्ड में लेखक ने वात्स्यायन लिखित कामसूत्र से पर्याप्त प्रेरणा ली है, किन्तु यह तर्क निराधार है क्योंकि तिरुक्कुरल में वर्णित प्रेम मर्यादित तथा सौंदर्य के प्रति संवेदनशील है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि तिरुवल्लुवर के लेखन में विश्वजनीन आकर्षण है जो किसी धर्म, जाति एवम् देशकाल की सीमाओं में न बँधकर सम्पूर्ण मानव समाज के लिए सत्य है। यह रचना आज भी प्रासंगिक है, और भविष्य में भी प्रासंगिक बनी रहेगी।

Scanned by TapScanner

नालडियार

तिरुक्कुरल के उपरान्त 'नालडियार' नैतिक शिक्षा का दूसरा महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसके अन्तर्गत चार पंक्तियों के वेणवा छन्द का प्रयोग किया गया है और इसमें ऐसे 400 चतुष्पदी हैं। जिनको विभिन्न कवियों ने लिखा है। 'नालडियार' को तीन भागों में विभक्त किया गया है: 1)धर्म, 2)अर्थ और 3)काम विभाग।

'नालडियार' में संन्यासी जीवन-यापन पर बल दिया गया है। क्योंकि युवावस्था, धन और शरीर सब नाशवान हैं जिस प्रकार फलों को दे देने के उपरान्त बगीचा अपनी आभा खो देता है; उसी प्रकार युवावस्था और आकर्षक सुन्दरता भी समय के साथ-साथ समाप्त हो जाती है।

'नालडियार' में प्रमुख रूप से, जैन धर्म के सिद्धान्त और नैतिकता का वर्णन किया गया है जिससे प्रतीत होता है कि यह पुस्तक जैन संन्यासियों द्वारा लिखी गई है।

महाकाव्य द्वय

शिल्पधिकारम् और मणिमेखलै तमिल साहित्य के दो प्रसिद्ध महाकाव्य हैं।

सिल्पधिकारम्

इस महाकाव्य के रचयिता इलंगो अडिहल चेर राज्य के शाही परिवार से सम्बन्धित थे। ऐसा कहा जाता है कि एक भविष्यवक्ता ने यह भविष्यवाणी की थी कि अपने अग्रज के स्थान पर इलंगो राजा बन जाएँगे। यह भविष्यवाणी सुनने के पश्चात इलंगो ने सांसारिक मोहमाया के सभी बंधन त्याग दिए एवं बौद्ध भिक्षु(मठवासी) बन गए। इस प्रकार हम देखते हैं कि इलंगो ने भरत के समान भ्रातृप्रेम की परम्परा का ही अनुसरण नहीं किया वरन् महाभारत के भीष्म पितामह के समान त्याग का आदर्श भी रखा।

इस काव्य की कथावस्तु, चेर, चोल व पांड्य राज्यों की सीमाओं के भीतर से ही ली गई है। अतएव इस काव्य की घटनाएँ तीन राज्यों के अन्तर्गत घटती हैं।

1. चोल राज्य की राजधानी कावेरी पूम्पट्टिनम्(कावेरीपट्टनम्) अथवा पुहार
2. पांड्य राज्य की राजधानी मदुरई
3. चेर राज्य की राजधानी वंजिक

प्रमुख कथा–चोल राजधानी पुहार में कोवलन नाम के वणिक कुमार का विवाह कण्णही नाम की वणिक्-कन्या के साथ सम्पन्न हुआ। कुछ समय पश्चात कोवलन राजमहल की एक नृत्यांगना माधवी के सौंदर्य से आकर्षित होकर, अपनी पत्नी को छोड़कर माधवी के साथ रहने लगा। इससे उसे धन की बहुत हानि हुई। कालान्तर में, एक बार कोवलन और माधवी, पुहार नगर के समुद्र तट पर, बैठकर वीणा-वादन के साथ गीत गाने लगे। पहले कोवलन, प्रेमभाव(पत्नी वियोग) की अभिव्यक्ति गीत के माध्यम से करता है किन्तु माधवी उसके अन्तर्मन की व्यथा के भाव को समझ नहीं पाती;

परिणामस्वरूम रूठकर वह, किसी काल्पनिक नायक के प्रति अपने प्रणय से भरा गीत सुनाती है। इससे कोवलन का दिल टूट जाता है और वह अपनी पत्नी के पास वापस लौट आता है। तब तक कोवलन बहुत निर्धन हो चुका था अतएव कण्णही उसे अपना एक बहुमूल्य नूपुर देती है जिसे बेचकर वह एक नया व्यापार आरम्भ कर सके।

पाण्ड्य राज्य की राजधानी मदुराई में कोवलन एक सुनार को नूपुर दिखाता है जो भाग्यवश राजा का जौहरी होता है और इससे पहले रानी का नूपुर चुरा चुका था। इसे एक सुनहरी मौका समझकर, वह स्वयं राजा के पास जाकर कहता है कि रानी का नूपुर चुराने वाला व्यक्ति पकड़ा गया है। राजा सुनार की बात का विश्वास कर कोवलन को मृत्युदण्ड दे देता है। जब कण्णही को पति की मृत्युदण्ड की परिस्थितियों का पता चलता है तब वह राजदरबार में जाकर इस बात का प्रमाण देती है कि उसका पति निरपराधी है। पुष्टि हेतु वह नूपुर को तोड़ देती है जिसमें लाल रत्न भरे होते हैं, जबकि रानी के नूपुर में मोती ही भरे थे। अपने अक्षम्य अपराध का आभास होते ही, राजा के प्राण-पखेरू तत्क्षण उड़ जाते हैं, इसके साथ ही रानी की भी मृत्यु हो जाती है। इसके पश्चात् भी कण्णही का क्रोध शान्त नहीं होता और वह अपने वामस्तन को अपने हाथ से मरोड़कर फेंकती है जिससे पूरा मदुराई जलकर राख हो जाता है। तदुपरान्त कण्णही पड़ोसी चेर राज्य में जाकर, चौदह दिन तक रहती है। वहाँ कोवलन एक दिव्य रथ में आता है और कण्णही को स्वर्ग ले जाता है। जब चेर राज्य का राजा शेंगुट्टुवन् कण्णही के विषय में सुनता है तो वह कण्णही की स्मृति में एक मंदिर बनवाता है। इसके लिए वह हिमालय से एक पत्थर मंगवाता है, जिससे कण्णही की मूर्त्ति बनवाई जाती है। बाद में कुछ किंवदंतियाँ यह भी बताती हैं कि कण्णही माता दुर्गा का ही अवतार थी।

सिल्प्पधिकारम् पहला महाकाव्य था जिसमें तमिल साहित्य के बहुत से प्रयोग प्रथम बार किए गए थे। चोल, पांड्य और चेर तीन विभिन्न राज्य थे तथा एक राज्य का कवि कभी दूसरे राज्य की प्रशंसा नहीं करता था। किन्तु इलंगो ऐसे पहले कवि हैं जिन्होंने तीनों खण्डों को मिलाकर तमिल प्रदेश को समग्र रूप में देखने की चेष्टा की और काव्य की कथावस्तु तीनों प्रदेशों को ध्यान में रखकर बनाई।

सिल्प्पधिकारम् में गद्य, पद्य तथा नाटक तीनों का सुन्दर समन्वय है किन्तु काव्य संगठन पद्धति नाटकोपयुक्त है। कवि ने पात्रों के जीवन का वर्णन करते हुए अत्यन्त चित्रात्मक भाषा का प्रयोग किया है। शिकारियों, चरवाहों एवं पहाड़ी प्रदेशों में रहने वाले लोगों द्वारा गाए गए लोकगीत भी इस काव्य की नाटकीयता के सौन्दर्य को द्विगुणित करते हैं। यही कारण है कि 'शिलप्पधिकारम्' को नाटकीय महाकाव्य भी कहा जाता है।

मणिमेखलै

'मणिमेखलै', शातनार (यह तीसरे संघ के सदस्य भी थे) द्वारा रचित दूसरा तमिल महाकाव्य है। यह अहवल छंद में लिखा गया है तथा सिलप्पधिकारम का उत्तरार्द्ध माना

Scanned by TapScanner

जाता है। यह एक स्त्री प्रधान महाकाव्य है जो कोवलन और राजनर्तकी माधवी की पुत्री से सम्बन्धित है। 'मणिमेखलै' में 30 सर्ग हैं जिन्हें 'कदै'(गाथा) कहा जाता है।

कोवलन की मृत्यु के उपरान्त माधवी ने संसार त्याग दिया तथा बौद्धभिक्षुणी का जीवन यापन करने लगी। उसने मणिमेखला को कोवलन और कण्णही की पुत्री के रूप में प्रतिष्ठित किया क्योंकि समाज मणिमेखला को राजनर्तकी के रूप में देखना चाहता था। फिर चोल राजकुमार उदय कुमार उसके आकर्षण में आबद्ध होकर रात-दिन उसका पीछा करने लगा तब मणिमेखला अपने कुटुम्ब की देवी के सहयोग से मणिपल्लव द्वीप में रहने लगी। वहाँ बुद्ध के धर्मपीठ में, उसे पूर्वजन्म की बातें स्मरण आती हैं कि उदय कुमार उसका पूर्वजन्म में पति था तथा इस जीवन में उसे निर्धनों तथा अस्वस्थ लोगों की सेवार्थ भेजा गया है। ज्ञान प्राप्ति के बाद वह साध्वी नारी बन जाती है तथा उसे 'अमृत सुरभि' नामक एक पात्र प्राप्त होता है जिसकी विशेषता यह थी कि एक बार साध्वी स्त्री द्वारा भर दिए जाने पर वह सदा भरा बना रहेगा।

चोल प्रदेश में अकाल पड़ा और मणिमेखला ने उस बर्तन की सहायता से निर्धन, ज़रूरतमन्द और जेल तक में अपराधियों को भोजन प्राप्त कराया। उसका यह सेवाव्रतधारी रूप उदय कुमार को स्वीकार नहीं होता। उदय कुमार से स्वयं को बचाने के लिए वह कामचंद्रिका का अर्थात् एक अन्य स्त्री का छद्मवेश धारण कर लेती है। उदय कुमार को इस बात का भी किसी प्रकार से ज्ञान हो जाता है और अब वह कामचंद्रिका (जो कि मणिमेखला का छद्म रूप है) का पीछा करने लगा। कामचंद्रिका के पति को इस बात का ज्ञान नहीं था और जब वह उदय कुमार को अपनी पत्नी जो कि वास्तव में मणिमेखला है, का पीछा करते हुए देखता है तो उदय कुमार की हत्या कर देता है। मणिमेखला के छद्म रूप को राजकुमार की हत्या का कारण मानते हुए उसे एक जेल में डाल दिया जाता है। लेकिन वह अपनी जादुई शक्ति से बराबर बचती रहती है। यहाँ तक कि उदय कुमार की माता मणिमेखला के सतीत्व को भंग करने के लिए एक पुरुष को भेजती है लेकिन मणिमेखला पुरुष के रूप में परिवर्तित होकर अपने आप की रक्षा करती है। तदुपरान्त वह एक बौद्ध संन्यासी के पास चली जाती है जहाँ वह अपनी माता सहित निर्वाण के मार्गों का अध्ययन करती है। दुर्भाग्यवश महाकाव्य का अन्तिम भाग उपलब्ध नहीं है, फलतः यहीं पर कथान्त हो जाता है।

इस महाकाव्य में साहित्यिक विशेषताओं के स्थान पर धार्मिक प्रचार का प्राबल्य है विशेषकर बौद्धधर्म के सिद्धान्तों का।

Scanned by TapScanner

46 साहित्य और राष्ट्रीय आन्दोलन-1

"तुम भूल न जाओ उनको
इसलिए सुनो ये कहानी
जो शहीद हुए हैं उनकी
ज़रा याद करो 'कुर्बानी'।"

सन् 2006, पन्द्रह अगस्त (15 अगस्त 1947) भारत की स्वाधीनता का स्मृति-दिवस, साठ वर्ष बीत गए हैं। वंदे मातरम् पर छिड़ गया 'विवाद'–क्यों? राष्ट्रीयता, राष्ट्रप्रेम, राजभक्ति, राष्ट्रवाद अनेकार्थक हो गए–क्यों? विकासशील भारत का बसंती रंग फीका पड़ रहा है, वीर रस का विलय हो गया है.....(समसामयिकताओं में, राजनीतिक अराजकताओं में!) क्योंकि, ये (पथभ्रष्ट लोग).....भूल गए हैं "उनको".....इसलिए सुनो ये कहानी.....

दिखा गई पथ, सिखा गई
हमको जो सीख सिखानी थी
खूब लड़ी मर्दानी वह तो
झाँसी वाली रानी थी।"

–सुभद्रा कुमारी चौहान

समय: सन् 1857... अंग्रेज़ी शासन की स्थापना को निरस्त करने के लिए छिड़ा था वह पहला सशस्त्र 'स्वाधीनता आन्दोलन' जिसकी नायिका रानी 'लक्ष्मीबाई' थी। नायक थे 'नाना साहेब', 'तात्या टोपे', 'मंगल पांडे' आदि युद्धवीर। सहयोगी थे कुछ बचे हुए धर्मवीर, दानवीर-दयावीर राजा, रानी, नवाब और आमजन।

समृद्ध अतीत को भूलकर शताब्दियों से गुलामी की नींद में सोयी हुई भारतीय चेतना इस-बार अपनी अस्मिता पर पड़ी चोट से चौंक कर जाग गई थी। भारत के समस्त वाङ्मय ने भी करवट बदली और उठकर खड़ा हो गया आम आदमी के साथ, चल पड़ा कन्धे से कन्धा मिलाकर स्वतंत्रता सेनानियों के साथ.....कविता में, कहानी में, गीतों में, नाटकों-उपन्यासों के संवादों में, निबन्धों और लेखों में.....उस समय का साहित्य बन गया

डॉ. मोहिनी श्रीवास्तव, प्रवक्ता, हिंदी विभाग, कालिंदी कालेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

Scanned by TapScanner

स्वाधीनता संग्राम का प्रवक्ता और अपनी सृजनात्मक शक्तियों व प्रभावात्मक उक्तियों से गढ़ने लगा 'स्वतन्त्र भारत' का रूप औ' आकार।

सामाजिकता को बचाने के लिए सामाजिक संगठन बने। राजा राममोहन राय ने ब्रह्म समाज की स्थापना(1828) की। उन्हीं की प्रेरणा से प्रार्थना समाज(1867) बना जिसे केशव चन्द्र सेन और महादेव गोविन्द रानाडे ने आगे बढ़ाया। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने 1867 में बम्बई में आर्य समाज का आरम्भ किया। थियॉसाफिकल सोसायटी 1875 में न्यूयार्क में और 1893 में मद्रास में (एनी बेसेन्ट की अध्यक्षता में) बनी। 'दि लेडीज़ थियॉसाफिकल सोसायटी'(1882 में) बनी। ब्लावस्की ने नारी जागरण का काम आगे बढ़ाया। स्वर्ण कुमारी देवी ने 'सखि-समिति' बनाई। पंडिता रमाबाई रानाडे ने 1909 में 'सेवासदन' का गठन किया। ज्योतिबा फुले बुद्धिजीवी चिंतक थे। लेकिन अपने सांस्कृतिक गौरव के प्रकाश में ही 'प्रगति' के पक्षधर थे।

सुशीला बाई फुले ने 1851 में अछूत कन्या पाठशाला की नींव धरी। स्वामी रामकृष्ण परमहंस(शारदा देवी के पति) के योग्य शिष्य स्वामी विवेकानन्द ने 'रामकृष्ण मिशन' की स्थापना की। 1893 में न्यूयार्क शिकागो की विश्व धर्म संसद में 'हिंदू धर्म की वैज्ञानिक व्याख्या करने वाले विवेकानन्द सर्वाधिक प्रभावशाली वक्ता थे', 'न्यूयार्क हेराल्ड ट्रिब्यून' की न्यूज़ हेडलाइन थी यह। विश्व ने, धर्म भूमि भारत की दार्शनिक दृष्टि का अभिनन्दन किया और गुलाम देश को अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा मिली।

राजा राममोहन राय ने अंग्रेज़ शासकों पर दबाव डाल कर कई कानून भी बनवा डाले। यथा–सती प्रथा निषेध कानून(1829), विधवा-विवाह कानून(1856), ब्रह्म समाज की पत्रिका 'वामा बोधिनी'(1863) में विधवाओं के विवाह के लिए विज्ञापन छापे जाते थे। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने सन् 1886 में 'दयानंद ऐंग्लोवैदिक कॉलेज' की स्थापना की। 'सत्यार्थ प्रकाश', 'सदादर्श' आदि पत्रिकाएँ निकाली गईं। महाराष्ट्र में कार्वे ने सन् 1916 में 'श्रीमती नत्थीबाई दामोदर' विश्वविद्यालय खोला जो महिलाओं का प्रथम विश्वविद्यालय था। महाराष्ट्र की ही ताराबाई शिंदे(1850-1910) और इलाहाबाद की प्रखर बुद्धिजीवी भावुक साहित्यकार महादेवी वर्मा (1905-1987) भी निम्न मध्यम वर्ग व संस्कार-पीड़ित भारतीय महिलाओं की यथार्थ स्थिति का उद्घाटन करते हुए उसे बदलने के लिए प्रतिबद्ध और क्रियाशील रही हैं। जनसंपर्क का सशक्त माध्यम बनकर, उस समय की पत्र-पत्रिकाएँ धनुष-यज्ञ का-सा आयोजन करने लगी थीं।

सरफ़रोशी की तमन्ना के साथ–लेकिन, छदम् नामों से, जनता को जगाने के लिए 'उत्साहवर्धक', 'उत्तेजनापूर्ण' लेख व स्तम्भ लिखे जाते रहे। पंडित इन्द्र विद्यावाचस्पति–'अर्जुन' पत्र के संपादक थे। नाम बदलकर पत्र का नाम 'विजय' रख दिया और 'गांडीव के तीर'.....'वीणा की झंकार' शीर्षक से स्तम्भ लिखते रहे। सत्यकाम विद्यालंकार के साथ इसी कारण कई बार जेल भी गए। हिंदी में बालमुकुन्द गुप्त ने 'शिवशम्भु के चिट्ठे (लॉर्ड कर्ज़न के नाम) छद्म नाम से लिखे।

Scanned by TapScanner

किसी भी देश की ताकत उसकी भावनात्मक एकता ही होती है, और उसे एकता के सूत्र में पिरोने के लिए वहाँ के साहित्य में विचारधाराओं व सैद्धान्तिक-सामाजिक दृष्टि की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। आज! इक्कीसवीं सदी के भारत निर्माण में लगा हुआ भारतीय साहित्यकार जिस यथार्थबोध का दावा करता है, और जिन नए-नए नामों से (दलित विमर्श-जनवादी साहित्य-समाजवादी साहित्य) लिखकर वह सामाजिक समानता के लिए कटिबद्ध (प्रतिबद्ध नहीं) दिखायी देता है। वह जनवादी और समाजवादी दृष्टि, हमारे देश के इतिहास में 'मध्यकालीन' कहे जाने वाले 'भक्ति आंदोलन' का मुख्य स्वर थी। (कट्टरता, संकीर्णता, एकांगी दृष्टिकोण जड़ता और साम्प्रदायिकता तो किसी भी 'आन्दोलन' में आ घुसते हैं।) आठवीं शती के सिद्धनाथ योगी और बीसवीं शती के नए कवि धूमिल, एक स्वर में भावनाहीन ईश्वर प्रेम और भावनाहीन 'राष्ट्रवाद'-'बामशक्कत' को अनुपयुक्त बतलाते हैं:-

"भाव भाय में सिद्धि है, भाव भाव में भेव
जो मानौ तो देव है, नहिं तो भीत को लेव।"

क्या आज़ादी सिर्फ़ तीन थके रंगों का नाम है, जिन्हें एक पहिया ढोता है, या इसका कोई खास मतलब होता है?-धूमिल (संसद..........से सड़क तक)

वेदान्त के मानववाद को सामान्य जन के जीवन में उतारने वाले श्री अरविन्दो घोष (पाण्डिचेरी में आश्रम) और आधुनिक ज्ञान-विज्ञान का विशद् अध्ययन करने वाले आध्यात्मिक चिंतक व दार्शनिक (नव्यवेदांत) सिद्धान्त के स्थापक स्वामी विवेकानन्द ज्ञानी संत का परिपूर्ण समन्वय थे।

इन आधुनिक काल के संतों ने सिद्ध कर दिया है कि हम, मध्यकालीन विरासत को प्रगतिपूर्ण आधुनिकता के लिए कोई बाधा नहीं मान सकते हैं। स्वाधीनता आन्दोलन के लिए 'एकजुट' हुए भारतीय जनमानस ने गांधी जी के अहिंसा, सत्याग्रह, उपवास आदि अस्त्र-शस्त्रों के परीक्षण को अपनी आस्थावादी परम्परा से ही सफल बनाया है।

'बक्सर' और 'प्लासी' के युद्ध में नवाब सिराजुद्दौला और शाहआलम की हार के बाद, कम्पनी अधिकांश भारत पर शासन करने लगी थी। 1857 की आंधी 'राष्ट्रीय आंदोलन' की झलक दिखाकर ओझल हो गयी। भारत ब्रिटिश साम्राज्य का 'उपनिवेश' बन गया। नागार्जुन का कविहृदय कराह उठा-

"आओ रानी, हम ढोएँगे पालकी
रफ़ू करेंगे फटे पुराने जाल की।"

साहित्यकार और सामाजिक आन्दोलन फिर से 'एकमन' हो गए। फ़ारसी राजभाषा थी, अब अंग्रेज़ी राजभाषा बन गयी। भेदभाव भुलाकर जनता की भाषा 'हिंदुस्तानी' ही बनी रही, जिसमें हिंदी, उर्दू, संस्कृत, अरबी-फ़ारसी-तुर्की (अंग्रेज़ी भी) आदि सभी क्षेत्रीय रूपों की भी, सम्मिलित भागीदारी थी।

Scanned by TapScanner

अंग्रेज़ी, देश को तोड़ने के उपक्रम करती थी, पर देश उसके माध्यम से जुड़ने लगा था। सबसे त्वरित परिवर्तन शिक्षा के क्षेत्र में हुआ। अन्य देशों के साहित्य व विचारधाराओं के ज्ञान से, साहित्य के क्षेत्र में आधुनिक भाव-बोध का विकासशील पक्ष परिपुष्ट हुआ।

पौराणिक ईश्वरवाद और आदिकालीन रहस्यवाद की आध्यात्मिकता का स्थान आधुनिक मानव मन की सहज-अभिव्यक्तियों ने ले लिया। शैली, कीट्स, वड्र्सवर्थ आदि भारतीय रोमानी काव्यधारा(रहस्यवादी, छायावादी, स्वच्छन्दतावादी, वैयक्तिक गीतधारा) के प्रेरक बने। कवीन्द्र, रवीन्द्र, महादेवी, प्रसाद, निराला, पंत प्रमुख छायावादी रचनाकार थे। गोर्की, टालस्टाय, शेक्सपियर, गांधी, व्यास, कालिदास, भारवि, भास, जर्मन कवि गेटे, काण्ट आदि में अनुवाद के माध्यम से सांस्कृतिक और विचारधारात्मक आदान-प्रदान हुआ। नेहरू जी ने 'डिस्कवरी ऑफ इंडिया' लिखी। आर. के. नारायण ने 'मालगुडी डेज़' में जनजीवन की बेखबरी की खबर प्रकाशित की। सन् 1908 में दक्षिण अफ्रीका में 'नस्ल विरोधी आंदोलन' के प्रणेता महात्मा गांधी 'इंडियन ओपीनियन' पत्र में लिखे अपने लेखों से ही विश्वविख्यात हो रहे थे। साथ ही भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में अपने नेतृत्व की भूमिका भी सुनिश्चित कर रहे थे। उनकी रचना 'माई एक्सपेरीमेंट विद ट्रुथ' मील का पत्थर है।

प्रगतिकामी नारी-जीवन को अभिव्यक्ति देते-शरतचंद्र के उपन्यास 'चरित्रहीन' 'अरक्षणीया', 'देवदास' (जिस पर कई फिल्में बनीं) आदि स्त्रीवादी साहित्य की ठोस भूमि तैयार कर देते हैं। कविता साहित्य में माइकेल मधुसूदन ने 'वीरांगना'(1862) 'मेघनाथ वध'(1861) लिखकर वीरों का आवाहन किया। हेमचंद्र बंदोपाध्याय ने भारतेंदु हरिश्चंद्र की तर्ज पर अपनी कविताओं के नाम रखे- 'भारत संगीत', 'भारत विलाप', 'भारत भिक्षा'। इस तरह बंगाल के नवजागरण की शुरूआत पद्य में हुई। .....और फिर तो, जहाँ जहाँ पांव पड़े ब्रिटिशन के.....बंगाल में.....महाराष्ट्र में.....गुजरात में.....नवजागरण होने लगा।

मराठी काव्य में भी सामाजिक यथार्थ ही प्रमुख विषय रहा। केशवसुत की कविता में अछूत मजदूर और सामान्य जन के संघर्ष को अभिव्यक्ति मिली है। इनकी 'तुतारी' (तुरही) कविता क्रांति का जयघोष है। गडकरी गोविन्दाग्रज सामाजिक रूढ़िवादिता पर प्रहार करते हैं। ना. यु. गुप्ते व तांबे ने यथार्थ संघर्ष पर बल दिया हैं। बालकवि में लोकचेतना के सुन्दर चित्र हैं।

दामोदर सावरकर ने 1937 में 'कालेपानी' लिखी। केशव नारायण काले (1904-1974) प्रगतिशील रचनाकार थे। तिलक ने मांडले जेल में ही (1908-1914) 'गीता रहस्य' और 'कर्मयोगशास्त्र' की रचना की।

गुजराती साहित्य के मन्वंतर मनु भारतेन्दु के समकालीन नमेद(1833-1886) भी देशप्रेम और सामाजिक समस्याओं पर लिख रहे थे। आनन्दशंकर ध्रुव ने (1889-1942) भारतीय दर्शन और धार्मिक समन्वय, संस्कृति पर 'अपनी धर्मा' नाम से लिखा। गोवर्द्धनराम त्रिपाठी का 'सरस्वतीचंद' उपन्यास (1887) बहुत लोकप्रिय हुआ और उस पर फिल्म भी बनी।

Scanned by TapScanner

हिंदी, हिंदवी, हिंदुस्तानी, राष्ट्रीय स्वतन्त्रता आंदोलन की मुख्य भाषा थी। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, मैथिलीशरण गुप्त, रामधारीसिंह दिनकर, महादेवी वर्मा, सुभद्रा कुमारी चौहान, जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला आदि की रचनाओं में नवजागरण पूरे ओज और माधुर्य के साथ सचेतक का काम कर रहा था। माखनलाल चतुर्वेदी ने 'जवानी' को ललकारते हुए लिखा था–'रक्त है या है नसों में क्षुद्र पानी'। पंत ने कहा–'मुक्त करो नारी को चिर बन्दिनी नारी को'। भारतेन्दु के नाटक 'अन्धेर नगरी' 'विषस्य विषमौषधम्' यथार्थ को व्यंग्य के माध्यम से ग्राह्य बना देते हैं। प्रेमचंद के उपन्यास 'रंगभूमि', 'कर्मभूमि', 'निर्मला', 'सेवासदन' व उनकी कहानियाँ 'पंचपरमेश्वर', 'शतरंज के खिलाड़ी', 'बूढ़ी काकी' आदि भारत की ग्रामीण जनता, बदलते मानवीय संबंधों और अपने समय की परिस्थितियों के सूक्ष्म और सजीव यथार्थ का चित्र उपस्थित करते हैं। भवानी प्रसाद मिश्र, बालकृष्ण शर्मा नवीन, नागार्जुन, त्रिलोचन शास्त्री और निराला व दिनकर में स्वतन्त्रता और सामान्य जन से विशेष लगाव दृष्टव्य है।

कश्मीरी भाषा के काव्य में भी ब्रिटिश शासकों के आर्थिक शोषण की पीड़ा मुल्ला अबीबुल्ला(1848–1905) की कविता 'सन शतेहुक सैलाब' जमीनी यथार्थ की करुणा ही बयां करती है। अन्य कश्मीरी कवि पं. दयाराम अब्दुल आज़ाद, मज़हर आदि भी इसी साहित्यिक चेतना को जगाए हुए थे। गाथा गीत, महाकाव्य, पंचाली सपथम् के रचनाकार और अपने राष्ट्रीय गीतों से फिल्मों में प्रसिद्धि पाने वाले सुब्रह्मण्य भारती, तमिल नवजागरण के अग्रदूत बने। उनके दो काव्य संकलन स्वदेश गीतवाल(1908) और जन्मभूमि(1909) प्रकाशित हुए। स्वदेश(1904) और इंडिया(1906)–गोपालकृष्ण भारतीय और कमलकांत भट्टाचार्य(1859–1929) के असमिया काव्य में सांस्कृतिक गौरव और स्वतन्त्रता के स्वर प्रमुख हैं। गोपीनाथ चक्रवर्ती ने लोकशैली अपनाई।

तेलुगु में वीरेशविंगम सामाजिक समस्याओं पर लिखते थे। वेंकट अप्पाराव ने देशी छंदों में जनसम्पर्क साधा। गुडिपाटि वेंकटचलम्(1894–1979) तेलुगु साहित्य के नारीवादी लेखक थे। उन्होंने ससिरेखा(1921) और विधवा(1925) कहानियाँ नारी मुक्ति और मुक्त प्रेम पर लिखी हैं। तेलुगु के वड्डापि सुब्बाराव, जयति रामय्या, श्रीपाद कृष्णमूर्ति और राष्ट्रीय सांस्कृतिक गरिमा का स्वर बुलंद करने वाले अन्य कवि थे–मलयालम के वल्लतोल, तकषी शिवशंकर पिल्लै(1914–1999), वेणुमणि नंबूतिरिपाद, केरल वर्मा, उल्लूर आदि। कन्नड़ के डी. वी. गुडप्पा, मस्ति वेंकटेश अयंगार, आनंदकंद; असमिया के कवि कमलकांत भट्टाचार्य, रघुनाथ चौधरी; उड़िया के फकीर मोहन, मधुसूदन राव, चिंतामणि महंति; उर्दू के मौलाना अल्ताफ हुसैन हाली, फैज़, नज़ीर अकबराबादी, बहादुरशाह ज़फर(नवाब स्वयं) सांस्कृतिक व साम्प्रदायिक एकता के संरक्षक व उत्कृष्ट साहित्यकार थे। इकबाल का 'सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्तां हमारा' एक लोकप्रिय राष्ट्रीय गीत है।

भारत में 1936 ई. में प्रगतिशील लेखक संघ का प्रथम अधिवेशन हुआ। इसके साथ ही प्रगतिशीलता की राजनैतिक व्याख्याएँ भी प्रारम्भ हो गईं। फ्रांस और रूस में घटित

Scanned by TapScanner

क्रान्ति(1917) से समाजवाद और यथार्थवाद आदि आयातित होने लगे। गांधीवाद की शीतल छाया में मार्क्सवाद, समाजवाद, साम्यवादी-समाजवाद, अतियथार्थवाद, यथार्थवादी सौन्दर्यशास्त्र, अस्तित्ववाद(जर्मनी), विकासवाद(डार्विन), द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद, मनोविश्लेषणवाद(सिगमंड फ्रायड)—आदि विदेशी अवधारणाएँ भारतीय चिंतना को हवा देने लगीं। प्रगतिवाद और यथार्थवाद ने नए सिरे से जन-जन से जुड़ना प्रारम्भ कर दिया था। लेकिन मुख्य धारा में राष्ट्रीय सांस्कृतिक-साहित्यिक चेतना अपने देश के गौरवपूर्ण इतिहास से ही आदर्श चरित्रों का चयन करती रही। विराटकवि व्यक्तित्व निराला ने घोषणा कर दी कि:

है नश्वर यह दीनभाव, कायरता, कामपरता
योग्य जन जीता है
पश्चिम की उक्ति नहीं—गीता है
गीता है, स्मरण करो बार-बार
जागो फिर एक बार

अधिकतर जनता उस समय अनपढ़ थी। ऐसे में थियेटर एक लोकप्रिय माध्यम था। इप्टा या इंडियन पीपल्स थियेटर असोसिएशन 1940 में बना। 1942-1943 में बम्बई में यह जन नाट्य आंदोलन लेखकों-कवियों में बहुत लोकप्रिय था। बंगाली, मराठी आदि के प्रसिद्ध उपन्यासों का मंचन होने लगा। सरोजिनी नायडू इसकी प्रथम अध्यक्षा थीं। पंजाब, बंगाल, आन्ध्र और असम के देहातों में ये काफ़ी लोकप्रिय रहा और आज भी है।

सामाजिक विषय ही उस समय फिल्म के परदे पर दिखाए जाते थे। 'अछूत कन्या', 'दो आँखें बारह हाथ', 'प्यासा', 'दोस्ती', 'हकीकत' आदि फिल्में उसी का उदाहरण है।

पन्द्रह अगस्त सन् उन्नीस सौ सैंतालीस की तारीख: 'भारत विभक्त होकर स्वतन्त्र हो गया'। भारत विभाजन(भारत और पाकिस्तान) के समय हुए दंगों की कटु स्मृतियों के साथ दोनों देश अपने-अपने स्वतन्त्रता दिवस का उत्सव हर वर्ष मनाते हैं। यशपाल का 'झूठा-सच', भीष्म साहनी का 'तमस', अमृता प्रीतम का 'पिंजर'(इसका दुनिया की आठ भाषाओं में अनुवाद हुआ और इस पर फिल्म भी बनी है)—ये तीनों उपन्यास उन दंगों की त्रासदी के प्रामाणिक दस्तावेज़ हैं। 'पिंजर' की पूरो कहती है—"कोई भी लड़की जो ठिकाने पहुँच रही है, वह हिंदू हो या मुसलमान, समझना कि मेरी आत्मा ठिकाने पहुँच रही है।"

औद्योगिक क्रांति के साथ मशीनी युग की ओर बढ़ती हुई बीसवीं शती ने 1980 के बाद अपनी तीव्रगामी परिवर्तनशीलता से विश्व को भौंचक्का कर दिया। नई आर्थिक व्यवस्थाओं, नई तकनीकों, सूचना प्रौद्योगिकी व जन संचार माध्यमों ने समस्त विश्व को इतना नज़दीक ला दिया कि 'वसुधैव कुटुम्बकम्' नज़र आने लगा—लेकिन इस भूमण्डलीकरण(वैश्वीकरण) में 'कुटुम्बकम्' का विपरीत अर्थ है। नव्य पूंजीवाद, नव्य उपनिवेशवाद, नव्य साम्राज्यवाद, नव्य आर्थिक नीतियाँ (आर्थिक उदारीकरण के नाम पर)

Scanned by TapScanner

रीमिक्स, बहुराष्ट्रीय आर्थिक सामाजिक व सांस्कृतिक कम्पनियाँ कम्प्यूटर, इंटरनेट साइबर क्षेत्र, वेबसाइट, बिल गेट्स और कापी लेफ़्ट की नई अवधारणा जिसके तहत फ़िनलैण्ड कम्प्यूटर इंजीनियर लाइन्स ने गेट्स की 'विण्डोज़' के मुकाबले के लिए अपना सॉफ्टवेयर लाइनैक्स मुफ़्त बांट दिया है। पेटेण्ट की भागदौड़। मूल्यबोध(मानवीय मूल्य) वाली टिकाऊ भारतीय संस्कृति बिकाऊ पॉपुलर कल्चर में बदलती जा रही है। और पॉपुलर कल्चर की कोई निश्चित अवधारणा भी नहीं है। अब सिस्टम नहीं है, सेलिब्रेशन्स है, केवल सेलिब्रिटीज़ है सब: पेज थ्री के मोहताज। नेता– सेलिब्रिटीज़, लेखक–सेलिब्रिटीज़, पत्रकार–सेलिब्रिटीज़, धर्माधिकारी–सेलिब्रिटीज़। अमरीका की वर्जीनिया पोस्ट्रेल 'एनिमीज़ ऑफ़ द फ्यूचर' में इक्कीसवीं सदी के इन तूफ़ानी परिवर्तनों के एक दिन 'सेटल' हो जाने की आशा निश्चिंत रहने की बात कहती है।

कवि मनीषी प्रतिभू: स्वयंभू: इस परिप्रेक्ष्य से अप्रभावित कैसे रह सकता था। कवि हृदय अब इस यथार्थ से सीधे टकराने के मूड में आ गया है। सपाट बयान देने लगा है, अकविता लिखने लगा है। कवियों ने प्रगतिवाद के बाद–नई कविता के नाम से जो पैंतरे बदलने शुरू किए तो उन्होंने 'वादी' साहित्य के अन्त की घोषणा ही कर दी। पं. नेहरू ने एक बार कहा था कि "…..कविता दिल से निकलती है, दिल और दिमाग से नहीं, नहीं तो कोई नकली चीज़ उसकी जगह आ जाती है।" भीष्म साहनी की रचना 'तमस' उनके दिल की ही आवाज़ है–(गद्य में) सन् 1960 के बाद भारतीय सचेतन और शिक्षित समाज, 'स्वतन्त्र भारत' के 'स्वप्न भंग' की स्थिति को पहचान गया था और इस देशज यथार्थ से फूटे काव्यान्दोलन हिंदी, बंगला, उर्दू, तेलुगु, गुजराती, तमिल, कन्नड़, मराठी में उग्र रूप में सामने आए। अकविता दिगम्बर पीढ़ी की कविता, क्षुधातुर पीढ़ी (बंगला) आदि नामों से बीसवीं शती के कवि के लिए निर्देश था कि–"जिस तरह हम बोलते हैं, उस तरह तू लिख"–भवानी प्रसाद मिश्र।

सन् 1980 के बाद, भारतीय विद्वत् समुदाय के मध्य विदेशी उत्तर-आधुनिकताओं की चर्चाएँ-परिचर्चाएँ होने लगीं। लेखकों का लेखन और भी उपजाऊ हो गया और स्वदेशी आधुनिकता का प्रश्न हल किए बिना ही, ग्लोबल आधुनिकता में प्रवेश कर गया। स्त्रीवादी साहित्य, स्त्री-विमर्श, दलित-विमर्श, जनवादी-साहित्य, दलित-साहित्य, डायस्पोरा लेखन आदि समसामयिक नव-लेखन है।

अमरीका के ब्लैक पैंथर की तर्ज़ पर दलित पैंथर-लेखन का आरम्भ हो गया है। दया पंवार, नारायण सुर्वे, यशवंत मनोहर, बाबूराम बागुल, गंगाधर पानंताबगे, राजा ढाले, नामदेव ढसाल आदि पैंथर लेखक हैं। भारतीय साहित्य! अंग्रेज़ी भाषा में ज़ोर-शोर से लिखा जा रहा है। अब अंग्रेज़ी का मतलब केवल 'अंग्रेज़ी साहित्य' नहीं रह गया है।

इक्कीसवीं सदी की नारी के हस्ताक्षर के बिना मानव-प्रगति की हर रिपोर्ट झूठी और बेमानी है। आधुनिक काल से ही शुरू करें तो प्रथम स्वाधीनता आन्दोलन की नायिका रानी लक्ष्मीबाई मर्दानी-फ्रंट पर युद्ध करती दिखाई देती है। उसी परम्परा में

Scanned by TapScanner

लखनऊ की बेगम हजरत महल दिल्ली की बेगम ज़ीनत महल और चौहान रानी आदि भी हैं। एक हज़ार महिलाओं वाली 'रानी झांसी रेजिमेण्ट' सुभाष की आज़ाद हिंद फौज की शान थी और तेईस-चौबीस वर्ष की डाक्टर लक्ष्मी स्वामीनाथन उस ब्रिगेड की केप्टन थीं। कस्तूरबा गांधी, सरोजिनी नायडू, विजय लक्ष्मी पंडित, कमला नेहरु, अरुणा आसफ अली, नागालैण्ड की रानी गिडालू, दुर्गा बाई देशमुख आदि की 'स्वदेशी आंदोलन', 'नमक आंदोलन', 'असहयोग-आंदोलन', 'धरना', 'सत्याग्रह', 'प्रदर्शन', 'उपवास' आदि की विशिष्ट भूमिकाओं को इतिहास हमेशा याद रखेगा। क्रान्तिकारी मार्गरेट नोबल (भगिनी निवेदिता) और दुर्गा बाई की त्याग भावना और शांति घोष और सुनीति चौधरी की गरम दल की भूमिका को कौन भूल सकता है! इन सभी के सात्विक प्रयत्नों के कारण गुलामी की बेड़ियाँ टूटीं। आज जहाँ पश्चिम जगत की नारी को कानूनी अधिकार मिले हैं वहीं भारत में नारी सुरक्षा के कमज़ोर से प्रयास ज़रूर हुए लेकिन वे भी सामाजिक व्यवस्था में डिब्बा बंद सड़ते रहे। राष्ट्रसंघ की महासभा ने 1976 से 1985 के दशक को 'राष्ट्रसंघ महिला दशक: समानता, विकास और शांति' घोषित किया। फिर 'यूनिफेम'(राष्ट्रसंघ महिला कोष) और 'इनस्ट्रा'(अन्तरराष्ट्रीय महिला उत्थान और प्रशिक्षण संस्थान) भी बने। प्रति वर्ष 'आठ मार्च' महिला दिवस के रूप में मनाया जाता है। अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर होने वाले महिला सम्मेलनों में, सरकारी महिला संगठनों ने बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया और स्त्रीवादी लेखन या महिला लेखन या स्त्री भाषा अन्तरराष्ट्रीय स्तर के साहित्य सम्मेलनों और सेमिनारों का महत्त्वपूर्ण विषय बन गए हैं लेकिन क्रांतिकारी सामाजिक आंदोलन की चुनौती अब भी बनी हुई है। वर्ष 1979 के संयुक्त राष्ट्रसंघ के कन्वेन्शन से बँधा 'हमारा देश' 'लिंग-भेद' की समस्या से उबरने के लिए अब कौन सी 'मौलिक-नीति' अपनाएगा-यह तो भविष्य ही बताएगा।

❑❑❑

Scanned by TapScanner